ओ३म्

चतुर्थ सेमेस्टर, M.A. (संस्कृत) P.G. course के छात्रों के लिए EC-2 (धर्मशास्त्र | मनुस्मृति-06 अध्याय) से सम्बद्ध अध्ययन सामग्री • • • • •

पाठनिर्माण कर्ता विद्वान्

DR. C.S.R. Linga Reddy
Assistant Professor
Department of Sanskrit
B.N. College, Patna University,
Mob. No. 9760525164; 9410773430
Email - csrlr77@gmail.com

पाठनाम

मनुस्मृति के अनुसार वानप्रस्थाश्रमविधि

आचार-व्यवहार की शिक्षा के लिए वेदों का अनुसरण करती हुई अनेक स्मृतियाँ लिखी गई हैं। इनमें वर्णाश्रम-व्यवस्था, राजधर्म, विवादों का निर्णय आदि विविध विषयों पर प्रकाश डाला गया है। हमारी प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था स्मृतियों पर आश्रित है। आज भी अधिकांश भारतीय सामाजिक व्यवस्था के पोषक स्मृतियाँ ही हैं। स्मृति ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्त्व मनुस्मृति का है। मनुस्मृति का समय महाभारत काल से अतिशय पूर्व काल माना जाता है। वहीं आधुनिक विद्वान् इसका समय ईसापूर्व निर्धारित करते हैं। मनुस्मृति में सृष्टि से आरम्भ करके वर्णाश्रमधर्मों में मानवजीवन का व्यवस्थापन करते हुये मोक्ष तक का इसमें विवेचन है। इस स्मृति का प्रतिपादक मनु है। मनु को सभी मानवों का पिता कहा गया है। मनोरपत्यं मानवः। मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च (अष्टाध्यायी 4.1.161.) इस पाणिनीय सूत्र से मनुष्य शब्द भी निष्पन्न होता है। 'जन्मना भवति शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते'

इस पावन विचार का उद्घोषक मनु महाराज ही हैं। वर्तमान भारतीय समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जाति के आधार पर हैं। जो चिन्ताजनक है। अपितु विद्या धर्माचरण रूपी संस्कारों से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण माना जाना चाहिए था। कोई भी मनुष्य संस्कारों के अभाव में ही शूद्र माना जाना चाहिए। न कि जाति के आधार पर।

मनुस्मृति के षष्ठ अध्याय के प्रथम श्लोक से बत्तीसवें श्लोकपर्यन्त भाग में वानप्रस्थाश्रमविधि प्रतिपादित है। मनु महाराज ने मनुष्यमात्र का जीवन, जो सामान्य रूप से शतं वर्षाणि है, को चार भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग, जो जन्मतः 25 वर्षपर्यन्त है, ब्रह्मचर्याश्रम के रूप में; द्वितीयभाग, जो 26 वें वर्ष से 50 वें वर्षपर्यन्त है, गृहस्थाश्रम के रूप में; तृतीयभाग, जो 51 वें वर्ष से 75 वें वर्ष तक होता है, वानप्रस्थाश्रम के रूप में एवं मनुष्य जीवन का चतुर्थभाग, जो 76 वें वर्ष से 100 वें वर्षपर्यन्त होता है, सन्यासाश्रम के रूप में विभाजन उपलब्ध होता है। मनुस्मृति के छठे अध्याय के निम्न श्लोक में इसका सङ्केत मनु ने किया है-

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः। चतुर्थमायुषो भागं ...।। म.स्मृ. 6/33

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपनी आयु के तृतीय चतुर्थांश में वानप्रस्थाश्रम का सेवन करें। इसी के साथ मनुमहाराज ने वानप्रस्थाश्रम में प्रवेशार्थ एक और विकल्प मनुष्य के लिए प्रस्तुत किया है-

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः। अपत्यस्यैव चापत्यं
तदारण्यं समाश्रयेत्।। म.स्मृ. 6.2.

अर्थात् गृहस्थ को चाहिए कि जब अपने दैहिक त्वचा ढीली पड़ जाए, केश श्वेत होने लगे तथा अपने पुत्र का भी सन्तान हो जाए तो तब अरण्य की ओर प्रस्थान कर देना चाहिए। क्योंकि सांसारिक सम्बन्ध अशाश्वतिक (अनित्य) होते हैं। इनके मोहमाया में पड़ कर जीवन को व्यर्थ गंवाना उचित कहा नहीं जा सकता। अतः अरण्य अर्थात् जहाँ सामाजिक सम्बन्ध सम्पर्क आदि का कोई भी सूत्र न पहुँच सकता हो, ऐसे स्थान में वास करके निगूढ चिन्तन मनन आदि में लगना चाहिए। यह कार्य प्रत्येक

मनुष्य के लिए परम आवश्यक है। अन्यथा जीवनलक्ष्यों को पाना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि मनुष्य कृतनिश्चयी होकर वन में रहता हुआ विधिपूर्वक अपने इन्द्रियों पर विजय तभी पा सकता है, जब वह सम्बन्धमात्र से कमल की भाँति असंपृक्त रहे। इसलिए मनुस्मृतिकार ने मनुष्य को वानप्रस्थी होने से पहले क्या-क्या त्याज्य हैं तथा क्या-क्या अपरित्याज्य हैं इनका बोध कराया है। मनुष्य को चाहिए कि व्रीहि, यव-आदि ग्राम्य आहार एवं गाय, अश्व, शय्या आदि परिच्छेदों को छोड़े। परिच्छेद का तात्पर्य है कि जो जो जड़ चेतनात्मक पदार्थमात्र व्यक्ति से ममत्व से बन्धा हुआ है, उन सबको छोड़े। लेकिन पत्नी भी इनमें से एक है। पत्नी के लिए विकल्प देते हैं कि यदि पत्नी चाहे तो साथ में अरण्य को ले जाए अन्यथा अपने सन्तान के पास ही छोड़ जाए। कुछ अन्य परिच्छेद ऐसे हैं जो वानप्रस्थी के साथ रहना आवश्यक हैं। तथाहि—

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥ म.स्मृ.6.4.

अर्थात् अरण्य की ओर प्रस्थान के समय मनुष्य अपने साथ अग्निहोत्र से सम्बद्ध समस्त उपकरणों के साथ आवसथ्य, गार्हपत्य आदि श्रौत अग्नियाँ भी साङ्गोपाङ्ग साथ ले जाए। क्योंकि इनका नित्यशः सेवन अनिवार्य है। वानप्रस्थाश्रम में पञ्चयज्ञों का सम्पादन कैसे करें, इस सम्बन्ध में मनुस्मृतिकार ने वन में होनेवाले नाना हविषपदार्थों का उल्लेख किया है।

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ मनुस्मृति 6.5.

अरण्यों में उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार के मुनियों द्वारा सेवित नीवार आदि अन्न एवं शाक, मूल, फलों से पञ्चमहायज्ञों का सम्पादन वानप्रस्थी नित्य करे। उन्हीं से अतिथि सेवा और स्वयं का भी निर्वाह करे। अरण्य में वानप्रस्थाश्रमी आच्छादन के रूप में मृगादिचर्म तथा शाण, कुश, मुञ्ज आदि वृक्षवल्कल व चीर धारण कर सकता है। सायंप्रातः स्नान करे। जटा, श्मश्रु, लोम एवं नखों का

धारण करें। वानप्रस्थाश्रमी के कर्तव्यों का निर्देश मनुस्मृतिकार ने किया है — स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।

दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥ मनुस्मृति 6.8.

वानप्रस्थी को चाहिए कि प्रतिदिन वेदाभ्यास किया करें। शीतातप सुख दुःख आदि द्वन्द्वों का सहिष्णु बनें। सर्वोपकारक एवं संयत-मन वाला होवें। नित्य देनेवाला बने किन्तु किसी भी प्रकार का परिग्रह न करें। सभी प्रकार के जीवजन्तुओं में कृपादृष्टि रखें। गार्हपत्यकुण्ड में स्थित अग्नियों को आहवनीय एवं दक्षिणाग्नि कुण्डों में प्रतिष्ठापित करते हैं तो उसको वैतानिक अग्निहोत्र कहा जाता है। उस वैतानिक अग्निहोत्र का विधिपूर्वक अनुष्ठान करें। इसके साथ ही किसी भी प्रकार का क्रम भङ्ग किये वगैर दर्श एवं पौर्णमास इष्टियों का सम्पादन श्रद्धा एवं भक्ति के साथ करें। वानप्रस्थी को चाहिए कि नक्षत्रेष्टि, आग्रयण = नवसस्येष्टि तथा चातुर्मास्य, तुरायण एवं दाक्षायण आदि श्रौतकर्मों का सम्पादन क्रमशः करते रहें। पूर्वोक्त महायज्ञों, इष्टियों एवं श्रौतकर्मों के सम्पादन में चरु एवं पुराडाशों का निर्माण विधिपूर्वक वसन्त एवं शरदृतुओं में होनेवाले नीवार आदि मुन्यन्नों से करें। इस प्रकार से नीवार आदि मुन्यन्नों को यज्ञों में देवताओं को समर्पित करके शेषान्न का सेवन वानप्रस्थी करें। इस तरह से वानप्रस्थी स्थल एवं जल में होनेवाले शाक तथा यज्ञिय-वृक्षों से उत्पन्न पुष्प मूलफलों एवं इङ्गुद्यादि फलों से निकले तेलों का सेवन देवपूजा के पश्चात् करें। मनुस्मृतिकार ने वानप्रस्थी के द्वारा जो जो पदार्थ असेवनीय व वर्जनीय है, उसका उल्लेख किया है —

वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च।

भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च॥ म.स्मृ. 6.14

मधु, मांस, भूमि में होनेवाले कवक = छत्राक, वाहीक देश में होनेवाले भूस्तृण एवं शिग्रुक नामक शाकविशेषों तथा श्लेष्मातकफलों को छोड़ना चाहिए। जो भी अन्न पत्थर पर कूट कर अथवा दान्तों से चबाकर खाया

जा सकता हो, उसी का सेवन करें जो अग्नि में पक्व हो या अथवा काल के द्वारा पक्व। यदि अरण्यों में पूर्वोक्त सेवनीय पदार्थ उपलब्ध न होने पर प्राणमात्र के धारणार्थ अन्य तपस्वी विप्रों व वनवासियों से भिक्षा मांगा जा सकता है। अथवा किसी समीप के ग्राम से ही भिक्षा प्राप्त करके केवल आठ ग्रासों का ही ग्रहण करें। किन्तु मनुस्मृतिकार ने निम्न श्लोक में साररूप से वानप्रस्थाश्रमी के नियमोपनियम प्रदर्शित किया है —

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ मनुस्मृति - 6.26

वानप्रस्थी को चाहिए कि स्वादु फलभक्षण, शीतातपपरिहार आदि इन्द्रियार्थ सुखों के लिए किसी भी प्रकार से प्रयास न किया जाए। अष्टविध मैथुनों से दूर विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करें। भूमि पर ही शयन व्रत रखें। अपने आवास आदि में किसी भी प्रकार से ममत्व न रखें। वृक्षमूलवासी होकर पूर्वोक्त सभी कर्तव्यों का अनुपालन अनुशासन पूर्वक करें। इन नियमव्रतों के सेवन से न केवल शरीर विशुद्ध बनेगा अपितु विद्या, तप आदि धर्म की वृद्धि होगी। जो जीवन के परम लक्ष्य हैं।

उपसंहार:—

मनुस्मृति में प्रतिपादित वानप्रस्थाश्रमविधि मानव कल्याणार्थ है। यह वर्तमान समाज के लिए भी अनुपम मार्ग प्रशस्त करने में पूर्ण सामर्थ्यवान है। यदि पचासवें वर्ष में लोग सेवानिवृत्त होकर अरण्यवासी होंगे तो अवश्यमेव अपने जीवन की सत्यता का साक्षात्कार करने में सफल होंगे।

ॐ इति ॐ